सामाजिक और सांस्कृतिक युग के क्रांतिकारी संत कबीर

डॉ. आर.पी. वर्मा,
एसो. प्रो. एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय गोसाईखेड़ा,
जनपद–उन्नाव, उ.प्र.

कबीर का युग सांस्कृतिक और सामाजिक क्रांति का युग था। उस समय हिन्दु और मुस्लिम समाज बाह्माडंबर से घिर चुका था। कृत्रिमता ने सहजता को निगल लिया था। जनता में भेद–भाव की भेदक दीवार पर्यापत ऊंची हो चुकी थी। अंध–विश्वास भयावह रूप में पसरता जा रहा था। धर्म के नाम पर हिंसा, अनाचार और अत्याचार का यप समाज की संवदेनशीलता को निगल रहा था। वीभत्स और तृणास्पद कृत्यों से समाज गंभीरता से प्रदूषित हो रहा था। यवनों के उच्च पदासीन होने से, द्यूतक्रीड़ा और मद्यपान के प्रचलन से विलासिता और विषम मानसिकता समाज को घायल कर रही थी। हिन्दु समाज जहां निःसहाय और विवश हा रहा था, वहीं समाज में मानसिक एंव नैतिक पतन हुआ। इन्हीं विषम परिस्थितियों में कबीर का आविर्भाव हुआ।

संत शिरोमणि कबीर ने जगत की वास्तविकता को अच्छी तरह से पहचाना है। उन्होंने संसार के सार ब्रह्म तत्व को हृदय में धारण किया है। उनके आराध्य राम सर्वव्यापी और सर्वाधार हैं, अंतः वे उसी का अनुध्यान करते हुए गतिशील रहते है। परम शक्तिमान विधाता की शक्ति से ही कबीर के मन–मस्तिष्क का संचालन होता है। उन्होंने स्पष्ट रूप से विनम्र शब्दों में कहा है–

'कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाउं।

गले राम की जेवड़ी, जित खीचै तित जाउं।।'

कबीरदास ने गुरू को जीवन के सच्चे पथ–प्रदर्शक के रूप में मान्यता दी है। उन्होंने सद्गुरू को ही महामंत्र प्रदान करने वाला कहा है। इसलिए उन्होंने गुरू को ईश्वर के समकक्ष मानते हुए ईश्वर से पूर्व गुरू की अर्चना की है–

गुरू गोविंद दोऊ खड़े काके लागू पांय।

बलिहारी गुरू आपने गोविंद दियो बताय।।

गुरू के प्रति श्रद्धावनत कबीर अपने को धन्य मानते हैं, क्योंकि उन्होंने हृदय के अंतः पटल को खोला और दिव्य लोक देखने योग्य बनाया है–

सतगुरू की महिमा अनत अनत किया उपगार।

लोचन अनंत उघाड़िया अनत दिखावणहार।।

कबीर अपने गुरू के सम्मुख अकिंचन रूप में खड़े हैं। उनके पास गुरू को देने योग्य कुछ है ही नहीं। चिंताग्रस्त होकर कबीर कहते है–

राम नाम के पटतरै, देवै को कछु नाहि।

क्या ले गुरू संतोषियैं, हौंस रही मन मांहि।।

कबीर कवि ही नहीं महान सुधारक थे। उनके मन में आदर्श समाज की प्रेरक कल्पना थी। वे चाहते थे एक ऐसे समाज की गतिशीलता जो जाति, संप्रदाय और ऊँच–नीच आदि समस्त भेद–भावों से ऊपर हो। इस क्रम में जहां भी बाह्माडंबर रूढ़–विचार और भेद–भाव दिखाई दिया, उसका उन्होंने खुलकर विरोध किया है। कलाकत्ता विश्वविद्यालय के पूर्व प्रोफेसर एवं उत्तर प्रदेश के

राज्यपाल डॉ0 विष्णुकांत शास्त्री के विचार उल्लेखनीय हैं, ''कबीर को सामान्यतः जनवादी, विद्रोही या क्रांतिकारी कहने में कोई अनौचित्य नहीं है। निश्चय ही उन्होंने सामान्य जन के लिए सामान्य जन की भाषा में अपनी असामान्य बातें कही जिसका व्यापक प्रभाव हुआ। इसी तरह उन्होंने अपने समय के अन्यायपूर्ण ऊँच–नीच के छुआछूत, जात–पांत के बंधनों के विरूद्ध करारी चोट की थी, अतः वे विद्रोही थे। न उन्होंने मजहबी भेद–भाव को स्वीकारा, न आर्थिक, न शासकीय आतंक के सामने सिर झुकाया, न पुरोहिती वाग्जाल में वे फंसे, अंत वे क्रांतिकारी थे।''

सच है, परिवर्तन के विशेष मोड़ पर नये युग का द्वार खुलता है। विशेष क्षण ऐतिहासिक महत्व पा लेता है, चिनगारी को अनुकूल अवसर मिलने पर ज्वाला धधक उठती है। इसी प्रकार दमन चक्र के पसरते भयावह रूप को थामने के लिए कोई न कोई क्रांतिकारी अवतरित होता है। कबीर का जन्म–संदर्भ किंवदंतियों में आदर के साथ याद किया जाता है। लहरतारा के कमल की पंखड़ियों से उत्पत्ति मानकर उनके कोमल भावों को सम्मान दिया गया है। दूसरों के तन–मन को ढकने के सतत प्रयत्न में कबीर स्वयं तार–तार हो रहे थे। 'रीनी झीनी बीनी चदरिया।' स्वयं कर्म पर गतिशील रह कर दूसरों को कर्मयोगी बनने की प्रेरणा देते रहे हैं। जब कबीर ने सूत के ताने–बाने से बने कपड़े से मनुष्य को मर्यादित रूप प्रदान करने में अपने को असमर्थ पाया, तो उन्होंने भटके राही को सन्मार्ग पर लाने का संकल्प किया। कबीर ने खुल आंखों से गरीबों को भूखे, असहाय और तड़पते हुए देखा। भाई–भाई के बीच खड़ी ईर्ष्या, वैमनस्य और घृणा की कंटीली झाड़ियां को देख कबीर घायल हो गए थे। उन्होंने घर के आंगन में उठती ऊंची–ऊंची भेदक दीवारों को देख कर मानव के बंटने का दर्द भोगा है। वे इस विषमता को दूर कर मानवतावादी समाज की स्थापना के लिए तत्पर थे। उनके मन में दृढ़ विश्वास था कि ऊंच–नीच, छुआ–छूत की समाप्ति पर ही गरीबों का उद्धार संभव है।

संसार की गतिशीलता का मुख्य आधार सौमनस्य और प्रेम है। कबीर ने प्रत्येक प्राणी को सहज भाव से प्रेम करने का संदेश दिया है। उन्होंने स्पष्ट किय कि प्रेम के प्रवाह में जहां अहंकार का नाश होता है, वहीं गरीब और निसहाय को भी जीने का आधार मिलता है। प्रेम के माध्यम से पतितोद्धार का आकर्षक रूप सामने आता है। आवश्यकता है– सहज प्रेम–प्रसार।

प्रेम न खेती नीपजै, प्रेम न हाट बिकाय।

राजा परजा जेहि रूचै, सीस देई लेई जाय।।

डॉ0 विजयेन्द्र स्नातक ने कबीर के चिरस्मरणीय भावों का उल्लेख करते हुए लिखा है, ''कबीर का प्राणिपात्र के प्रति जो स्वाभाविक प्रेम है, वह उनके उस आभ्यंतरिक स्वरूप को भी अनावृत करता है, जो प्रेम में रक्त निरीह शिशु का होता है, जो जन्म से अस्पृश्य, किंतु कर्म से वंदनीय रहे।''

कबीर के मन में गरीबों, श्रमिकों तथा दलितों के प्रति गहरा अनुराग था। उनका सतत प्रयत्न रहा है कि श्रमिक ओर गरीब वर्ग ऐसी शक्ति संजो ले कि उसे सहज जीने का अधिकार मिल जाए। विद्वानों का मंतव्य है कि कबीर शूद्रों और अंत्यजों के लिए एक विशेष धर्म स्थापित करना चाहते थ और उसके ही माध्यम से मानवतावाद स्थापित करना चाहते थे। डॉ0 विष्णुकांत शास्त्री के अनुसार कबीर भेदभाव मुक्त समाज की स्थापना के लिए प्रयत्नशील थे, ''कबीर धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक किसी प्रकार के भेदभाव को स्वीकार नहीं करते थे। एक ही प्रभु से उत्पन्न होने के कारण कबीर बाहरी भेदभावों को अमान्य कर सब को समान मानते थे।''

कबीरदास बुराइयों को दूर करने के लिए किसी भी जाति, संप्रदाय अथवा धर्म को आधार बना कर अपने को सामाजिक सिद्ध करने वाले को खुलकर फटकार सुनाते थे। समानता का जैसा परिवेश कबीर बनाना चाहते थे, वह सभी दृष्टियों से अनुकरणीय है–

'हिन्दु तुरक का साहिब एक कह, करै मुल्ला कह करै सेख।

कबीर पंच तत्व–क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर, से निर्मित शरीर के आधार–समानता को महत्व देते हुए सभी मनुष्यों को समानधर्मी बताया है। ऐसी समानता में ऊँच नीच या सजातीय और शूद्र के भेद को निरर्थक घोषित किया है।

'एक बूंद एकै मल मूतर, एक चांम एक गूदा।

एक जोति थै सब उत्पन्न, कौन बाम्हन कोन सूदा।।

कबीर ने ब्राह्मण के पूत कर्मों की प्रशंसा की है। ऐसे कर्मों से सुचिता का मार्ग मिलता है। कबीर तो आदर्श पथगामी समन्वयात्मक समाज देखना चाहते थे। इसी संदर्भ से सभी जाति की अच्छाईयों को सराहा है, किंतु अच्छाइयों या विशेषताओं से सम्पन्न होने के बाद घमंड का भाव आ जाए, तो उसे कबीर त्याज्य मानते थे।

''संध्या तरपन अरूषट करमां लागि रहे इनके आशरमां।

गायत्री नु चारि चढ़ाई, पूछै जाइ कुमति किनि पाई।

सब में राम रहे ल्यौ सींचा, इन थै और कहौ को नीचा।

अति गुरू गरब करै अधिकाई, अधिकै गरब न होइ भलाई।

कबीर ने पथ–भ्रष्ट ब्राह्मणों की निम्नता, विचारों की उच्छृंखलता, लोलुपता और निकृष्टता–संदर्भ का निर्भीकता से खुलकर विरोध किया है –

ब्राह्मण गुरू जगत का धर्म कर्म का पाछ

उलझि पुलझि करि मरि गया चारयों बेदा माहि।

कलि का ब्राह्मण मसकरा, ताहि न दीजै दानि।

क्यों कुटउं नरकहि चले, साथ चल्या जजमान।

कबीर ने समाज के अनुकूलन में गरीबों और दलितों के उद्धार की संभावना को परख लिया था। इसीलिए कबीर ने सभी जातियों को संमार्गगामी होने की कामना की है। उन्होंने क्षत्रिय की बुराईयों के संदर्भ से यदि उन्हें खरी–खोटी सुनाई है, तो उनके श्रेष्ठ रूप की प्रशंसा भी की है। उनका स्पष्ट कहना है कि मानव जाति को एक परिवार मानते हुए भेदभाव त्याग की ही दृष्टि क्षत्रिय धर्म है–

''खत्री सों जु कुटुंब सूं सूझै, पंचू मेटि एक कूँ बूझै।''

कबीर ने गरीबों के शोषकों को खूब खरी खोटी सुनाई है। वे निर्भय और स्पष्ट वक्ता थे। किसी भी जाति या संप्रदाय का क्यों न हो, यदि गरीबों के अहित से जुड़ा हुआ हो, तो उसे कबीर की फटकार सुननी पड़ती थी। उन्होंने गरीबों से ब्याज के बहाने धन लूटने वाले वर्णिक पुत्रों को सचेत करते हुए कहा है –

'कलि का स्वामी लोभिया, मनसा धरी बधाई।

देहि पड़स ब्याज कौ, लेखा करता जाई।।

कबीरदास के मन में निःसहायों और दलितों के प्रति विशेष अनुराग था। उन्होंने देखा कि मुस्लिम शासकों द्वारा उन्हें बहुविधि प्रताड़ित किया जाता था, तो हिन्दुओं द्वारा भी उनके प्रति उपेक्षा और घृणा–भाव दर्शाया जाता था। मुस्लिम शासकों के

क्रूर व्यवहार से संतप्त दलितों को जब घर के ही सदस्यों द्वारा उपेक्षित किया जाए तो उनकी दशा बद से बदतर होना स्वाभाविक थी। कितनी बड़ी विडंबना है कि उन्हें शारीरिक कष्ट दिया जाए और फिर मानसिक प्रताड़ना से उन्हें घायल किया जाए, गरीब भी ईश्वर द्वारा निर्मित प्राणी हैं। सामाजिक विषमता को देख कबीर का मन विशेष रूप से घायल हो गया था। मुसलमानी शासन की कठोरता में दलित पिस रहे थे। वे भक्ति–भावना से विधाता की पूजा के लिए मंदिर जाना चाहते थ, किंतु दुर्भागयवश उन्हें मंदिर में जाने की अनुमति न थी। जिस समाज में ईश्वर की पूजा पर भी प्रतिबंध लगा है, वह समाज जितना कष्टकर होगा? सोच पाना भी कठिन है। कबीर मानवता के पावन भाव से 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की कल्पना में खोये थे। वे विषमताओं ओर आपसी भेद–भेद से मुक्त आदर्श समाज–निर्माण के लिए प्रयत्नशील थे।

कबीरदास ने धर्म–जाति के संकुचित विचारों से ऊपर उठ कर मानवीय और स्नेहिल परिवेश बनाने का आहवान किया है। उन्होंने मानव धर्म के पालन में समाजोत्थान की प्रबल ऊर्जा का स्त्रोत देखा था। कबीर ने अंतः करणीय चेतना–नैतिकता के बल पर विवेकी बनने और विवेकी बनकर मानसिक और व्यावहारिक निर्मलता अपनाने पर बल दिया है। उनका दृढ़ विश्वास है कि समाज के ऐसे चिंतन और ऐसे परिवेश में निर्धन, गरीब और असहाय को जीने का अनुकूल अवसर मिला।

महान समाज–सुधारक कवि–संत कबीर की वाणी को अब किताबों से निकाल कर जन–जन की वाणी बनाने की आवश्यकता है। उनकी वाणी में पतितों को उठाने का जयघोष है। आडंबर, रूढ़ियों और अत्याचार से मुक्त होने का मुखर स्वर कबीर की वाणी की अपनी विशेषता है। सच है जब समाज इन बुराइयों से मुक्त होगा तो निम्नवर्ग और असहाय का उद्धार सुनिश्चित हो जाएगा। इस प्रकार कबीर की वाणी में अधर्म ओर अन्याय के प्रति खुली बगावत है और उसमें प्रवाहित है–समानता की मानवतावादी संदेश देने वाली सुरसरिता।

कबीर समता, समानता ओर सहजता की त्रिवेणी बहाने के लिए जाति ओर धर्म के नाम पर फैले प्रदूषण को जड़समूल समाप्त करने के लिए कृवसंकल्प थे। कबीर, निर्भीक, निडर, स्पष्ट वक्ता ओर अनुकरणीय क्रांतिकारी साहित्यकार थे। आज के विद्वेष भरे समाज और वातावरण में असहायों और निम्न वर्ग को सम्मानजनक स्थान मिलने के लिए कबीर–वाणी को जन–मंत्र के रूप में श्रद्धाभाव से स्मरण चाहिए।

संदर्भ

- संपा. माताप्रसाद, कबीर ग्रंथावली।
- संपा. डॉ0 हरिहरि प्रसाद गुप्त, कबीर ग्रंथावली (गुरूदेव को अंग–3)।
- डॉ0 विष्णुकांत शास्त्री, हिन्दी अनुशीलन।
- डॉ0 विजयेन्द्र स्नातक, कबीर।
- डॉ0 विष्णुकांत शास्त्री, हिन्दी अनुशीलन(कबीर विशेषांक)।